Introduction

प्राक्कथन :

स्वातंत्र्योत्तर युग समाज के विभिन्न पहलुओं के साथ 'साहित्य' के लिए भी बदलते प्रतिमानों एवं विचारधाराओं का युग रहा है। निरन्तर प्रभावित होती रही यह चेतना आठवें दशक के उपन्यासों में एक विशेष हलचल लेकर सामने आयी। उपन्यास विधा में खासकर पारिवारिक उपन्यासों में मेरी विशेष रुचि रही है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी परिवार का सदस्य रहा है या है, इस विचार ने मुझे शोध की तरफ प्रेरित किया।

अनेक उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में पारिवारिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को समेटा है। पीएच.डी. शोध विषय के चयन के समय मैंने हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का अध्ययन आकलन करने का निश्चय किया।

उपन्यास वाङ्मय जीवन की व्यापकता से होड़ लेता है। मानव की एक-एक वृत्ति, समाज का एक-एक अंग तथा युग की एक-एक समस्या के चित्रण को ध्येय बनाकर ही आधुनिक उपन्यास आगे बढ़ता है। यही नहीं, बल्कि इस कोरे चित्रण से भी आगे आकर उपन्यास अपनी विशेष प्रतिभा से मानव तथा समाज को पथ प्रदर्शित करता, उसकी वृत्तियों को मोड़ता तथा उसकी गुत्थियों को सुलझाता भी है।

उपन्यास साहित्यिक अभिव्यंजना का सबसे स्वतंत्र साधन है। जीवन की यथार्थता से ही वह प्रेरणा पाता है और उसी के कलात्मक अंकन में परितृप्ति मानता है। जीवन परिवर्तनशील है और इस परिवर्तन को ग्रहण करते चलना ही उपन्यास की प्रगतिशीलता है। उपन्यास मानव स्वभाव पर परिस्थितियों की प्रतिक्रिया के अंकन का प्रयास है। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक रुढ़ियों की कायापलट सी हो गई। यद्यपि यह क्रांति संसार के सभी देशों में हुई, किन्तु

परिणाम में भिन्नता रही। पाश्चात्य देशों में जितने तीव्र वेग से परिवर्तन हुए उतने वेग से भारत या चीन आदि पूर्वी प्रदेशों में नहीं। इस क्रांति का प्रभाव पाश्चात्य उपन्यास वाड्मय पर स्पष्ट लक्षित होता है। भारत की जनता दो भागों में विभाजित हो गई। अधिकांश जनसंख्या गाँवों की है, अल्पांश नगरों की कल कारखानों में काम करने वाले श्रमिक, दफ्तरों में काम करने वाले थोड़े पढ़े-लिखे बाबू लोग, कॉलेज के विद्यार्थी आदि थे। गाँवों की जनता पर नवीन जागृति का अत्यल्प प्रभाव पडा है। उनकी धार्मिक, सामाजिक एवं नैतिक धारणाएँ आज भी वैसी ही हैं, जैसी पाँच सो वर्ष पूर्व थी। इस सभ्यता के युग में भी पुलिस के अफसरों का, जमींदारों और साहूकारों का आतंक ज्यों का त्यों बना हुआ है। छुआछूत, धर्म-कर्म आदि का अब भी बोलबाला है। नगरों में अपेक्षाकृत अधिक चेतना है। नगर के श्रमिष्ठ किसानों की अपेक्षा स्वाधिकारों के प्रति अधिक जागरुक हैं, किन्तु धार्मिक एवं सामाजिक रुढियाँ ज्यों की त्यों हैं।

यही दशा मध्यवर्ती पढ़े-लिखे लोगों की है किन्तु इनके साथ विडंबना यह है कि बहुत-सी बातों के थोथेपन को जानते हुए भी परम्परा का निर्वाह करते जा रहे हैं। सुधारकों द्वारा कई आन्दोलन चलाए गये, जिसमें दहेज, विधवा विवाह, छुआछूत आदि की समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न किये गये, किन्तु इस आन्दोलन का प्रभाव पढ़े-लिखे कुछ उच्च वर्गीय लोगों तक ही रह गया है। स्त्री शिक्षा एवं सहशिक्षा के कारण कुछ स्त्रियाँ पुरुषों से स्वतंत्रतापूर्वक मिलने लगी हैं परिणामस्वरूप नई-नई समस्याएँ भी उठ खड़ी हुई हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से स्त्री-पुरुष के संबंध को रुढ़ियों से मुक्त करके अधिक उदारता के समान अधिकारों की माँग होने लगी है। प्रेम-विवाह, विधवा विवाह, अंतर्जातीय विवाह, सिविल विवाह आदि के छिटपुट निदर्शन होने लगे हैं। पति-पत्नी विच्छेद के समाचार भी अक्सर मिल जाते हैं। इन सबका प्रभाव हमारे उपन्यास वाड्मय पर पडा है परन्तु जिस रूप में पड़ना चाहिए था उस रूप में नहीं पडा।

प्रस्तुत शोध प्रबंध ''हिन्दी उपन्यासों में समसामायिक पारिवारिक जीवन : एक अनुशीलन 1971 से 1990 तक'' हिन्दी उपन्यास साहित्य के एक शतक का लेखा-जोखा देने का प्रयास किया है। प्रारम्भ में उपन्यास के रूपबंध पर विचार करते हुए सन् 70 तक की पारिवारिक औपन्यासिक परम्परा को निर्दिष्ट किया गया है। तत्पश्चात् सन् 1971 से 1990 तक के पारिवारिक उपन्यास साहित्य का विस्तृत अध्ययन करके अपनी स्थापनाएँ दी हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में औद्योगीकरण और नगरीकरण के बढ़ने के साथ एकल परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है। परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। मानव ने अनेकानेक आविष्कार किये हैं, किन्तु आज तक वह कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाया है, जो परिवार का स्थान ले सके। इसका मूल कारण यह है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले कार्य अन्य संघ एवं संस्थाएँ करने में असमर्थ हैं। मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में यौन संतुष्टि भी महत्वपूर्ण है, परिवार ही वह समूह है जहाँ मानव समाज द्वारा स्वीकृत विधि से व्यक्ति अपनी यौन-इच्छा की पूर्ति करता है, इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के रूप में होता है। परिवार ही अपने सदस्यों को शारीरिक संरक्षण प्रदान करता है, वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना आदि की अवस्था में परिवार ही अपने सदस्यों की सेवा करता है, गर्भवती माता या नवजात शिशु की शारीरिक रक्षा का भार भी परिवार पर ही होता है। प्रत्येक परिवार के पास सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कोई अर्थव्यवस्था अवश्य होती है। इस अर्थव्यवस्था के द्वारा ही वह आय प्राप्त करता है। परिवार की गरीबी एवं समृद्धि का पता आय से ही ज्ञात होता है। प्रत्येक परिवार किसी न किसी धर्म का अनुयायी भी होता है। सदस्यों को धार्मिक शिक्षा, धार्मिक प्रथाएँ, नैतिकता, व्रत-त्यौहार आदि का ज्ञान भी परिवार ही कराता है। ईश्वर पूजा एवं आराधना, पूर्वज पूजा, आदि कार्यों को एक व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों से ही सीखता है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, हिंसा-अहिंसा की धारणा भी

एक व्यक्ति परिवार से ही ग्रहण करता है।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय समाज में परिवार का स्वरूप परिवर्तन बहुत तेजी से हुआ। देश की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में जितनी तेजी से परिवर्तन आया है, उससे नारी को घर से बाहर निकलने, शिक्षा प्राप्त करने तथा स्वयं को अभिव्यक्त करने के विपुल अवसर मिले हैं। बढ़ती महँगाई के कारण परिवार की आवश्यकताएँ प्रायः एक व्यक्ति की आय में पूरी नहीं हो पातीं। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक चेतना तथा बढ़ते हुए आर्थिक दबाव ने नारी तथा समूचे समाज के चिंतन को परिवर्तित किया है। इसलिए विवाहित-अविवाहित महिलाएँ तथा नवजात शिशुओं की माताएँ भी कमर कसकर पुरुषों की अर्जन दुनिया में आ खड़ी हुई हैं।

आजकल व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो गया है। रिश्तेदारी निभाना यानि उनके प्रति जिम्मेदारी भी निभाने से व्यक्ति दूर भागना चाहता है। क्योंकि परिवार के सभी सदस्य स्वतंत्रता चाहते हैं और इसमें परिवार का बंधन बाधा डालता है। व्यक्ति अपने ही स्वार्थों की पूर्ति में लगा रहता है। इससे पारिवारिक संगठन पर कुप्रभाव पड़ता है। अब परिवार के सदस्यों में उतना सहयोग व त्याग की भावना नहीं पायी जाती।

स्वतंत्रता के बाद समाज क्षतविक्षत हो उठा, संपूर्ण समाज अनेक विसंगतियो का शिकार बन गया। जीवन की सामाजिक परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन हुए। यह परिवर्तन समाज के सभी क्षेत्रों और पक्षों से सम्बंधित है। जैसे सामाजिक जीवन का मूल आधार अर्थात् पारिवारिक व्यवस्था ही परिवर्तित हो गयी। स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक परिस्थितियों के मूल में जो आन्दोलन सक्रिय रूप से सहायक रहे हैं, उनमें से कुछ का प्रारम्भ विगत शताब्दी में ही हो चुका था। उदाहरण के लिए ब्रह्म समाज का उल्लेख किया जा सकता है। नारी जीवन की रुढिवादिता, अंध

विश्वास, अज्ञान, अशिक्षा, पर्दा-प्रथा का निर्मूलन इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य था। स्वामी दयानंद सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले, डॉ. भीमराव अम्बेड़कर आदि ने भी दलित जातियों के उत्थान में सराहनीय कार्य किये।

स्वतंत्रता के बाद देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक स्थितियों में परिवर्तन के कारण समाज तथा परिवार पर भी उसका अधिक प्रभाव पडा। मध्यमवर्ग भी इस प्रभाव से अछूता न रहा। परिणामस्वरूप आर्थिक कठिनाइयों से त्रस्त संयुक्त परिवारों की परम्परा में दरार उत्पन्न हो गयी और सम्बंधों में अलगाव उत्पन्न हो गया। समाज में प्राचीन मूल्यों और परम्पराओं का विघटन होने लगा और नवीन मान्यताओं की स्थापना का दौर प्रारम्भ हुआ।

८वें, ९वें दशक के हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ तथा उनका पारिवारिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा, परिवार कैसा था, क्या परिस्थितियाँ थी इस पर प्रकाश डाला है।

संयुक्त परिवारों का विघटन, तलाक की समस्या, नौकरीपेशा महिला की स्थिति, पति-पत्नी के बीच आनेवाले तनाव, बच्चों की समस्या, परम्परागत नैतिक मूल्यों में विघटन, उन्मुक्त यौन प्रवृत्ति, पुरुष की स्थिति आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

शिल्प, भाषा शैली, कथावस्तु, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा का बदलता स्वरूप, संवाद आदि विषयों की दृष्टि से भी मैंने इन उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। हिन्दी का नया कथा साहित्य अपने आप में रूप-गठन सम्बंधी अनेक विविधताएँ लिए हुए है ।

मैंने उपसंहार के रूप में 1971 से 1990 तक के पारिवारिक उपन्यासों का

पारिवारिक विश्लेषण देने का प्रयास किया है। साहित्य चूँकि जन-जीवन की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए साहित्यकारों ने भी परिवार के बदलते स्वरूप पर प्रकाश डाला है। भारतीय समाज आज जिस दौर से गुजर रहा है वहाँ परम्परागत तथा आधुनिक मूल्यों में द्वन्द्व होना स्वाभाविक है। नई और पुरानी मान्यताओं में समन्वय स्थापित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। जहाँ एक ओर विवाह को जन्म-जन्मों का अटूट सम्बंध तथा पति को परमेश्वर मानने का भाव है, वहीं आज विवाह को इच्छा व सुविधानुसार तोड़ दिया जानेवाला एक समझौता तथा पति-पत्नी को मित्र मानने का आग्रह भी है। पत्नी की दोहरी जिम्मेदारियों तथा विवाह प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण पति और पत्नी की निर्धारित भूमिकाओं में भारी अनिश्चितता आ गई है क्योंकि कुछ भूमिकाओं को छोड़कर शेष में अब कोई अंतर नहीं है। बढ़ती हुई दिशाहीन शिक्षा पद्धति ने बेरोजगारी को बढ़ावा दिया है। स्त्री-शिक्षा ने जहाँ इस वर्ग को आत्म-निर्भर किया है वहीं नवीन सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है। बढ़ते हुए व्यक्तिवाद ने स्त्री-पुरुष की अहं वृत्ति को अत्यधिक उत्तेजित किया है, जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य जीवन में दरारें पड़ रही हैं और परिवार टूटते जा रहे हैं। आज की बदलती हुई चिंतन प्रणाली ने जीवन में अभूतपूर्व परिवर्तन किये हैं। जिससे मध्यवर्गीय समाज नये पुराने संस्कारों के बीच पिस रहा है। उच्च तथा एकदम निम्न वर्ग का नैतिक मूल्यों से कोई लेना-देना नहीं है।

अंत में मैं कहना चाहूँगी कि उपन्यासों में समसामायिक पारिवारिक जीवन पर शोध करने का मेरा स्वप्न शायद पूर्ण नहीं होता यदि मुझे श्रद्धेय गुरुजनों की प्रेरणा एवं सहयोग नहीं मिला होता।

''गुरु बिनु ज्ञान, कबहुँ नहि होई।
कह गये कबीरा, तुलसी हर कोई॥''

सचमुच, बिना गुरु के ज्ञान होना संभव नहीं है। गुरु की महिमा अपरंपार है। गुरु ही एक सच्चा मार्गदर्शक है जो हमें लक्ष्य को पूर्ण करने में हमारी सहायता करता

है। मार्ग में आनेवाली विघ्न-बाधाओं से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है, और ज्ञान के दीपक को अपनी शक्ति के माध्यम से प्रदीप्त करता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को संपूर्ण करने में मुझे परम श्रद्धेय डॉ. शैलजा भारद्वाज की ममता और स्नेह की छाँव में रहकर ही उनका दिशा-निर्देशन तथा प्रोत्साहन मिलता रहा। कई बार इस शोध के दौरान ही कुछ कठिनाईयाँ आई, परन्तु उन कठिनाईयों को दूर करने के लिए हमेशा मुझे अपनी ममता से सांनिध्य में रखकर, प्रोत्साहित करती रहीं और मार्ग पर विघ्नों का सामना करते हुए आगे बढ़ने का दिशा निर्देशन करती रहीं। यह अप्रतिम कार्य आपकी ममता और स्नेह के कारण ही सफल हो सका है। आपके मार्गदर्शन की आवश्यकता जीवन के कदम-कदम पर पड़ेगी और आपका हर निर्देशन मेरे जीवन का पथप्रदर्शक बने। अतः गुरुचरणों में मेरा कोटि-कोटि वंदन स्वीकार हो।

हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. विष्णु विराट चतुर्वेदी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। इनके अतिरिक्त डॉ. पारुकांत देसाई, डॉ. ओमप्रकाश यादव, डॉ. मायाप्रकाश पाण्डेय, डॉ. सरोज वोहरा के प्रति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रेरणा दी और इस कार्य को सम्पन्न करने का अमूल्य सत्परामर्श प्रदान किया। अपने शोध कार्य में मुझे जिन विद्वानों से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सबके प्रति श्रद्धापूर्वक मैं अपना आभार ज्ञापित करती हूँ।

मेरे पूजनीय माता-पिता (विशेषकर माता के) स्नेह आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन का ही सुपरिणाम है कि यह शोधकार्य मैं पूर्ण कर सकी। क्योंकि मेरी माताजी ने प्रारंभ से ही जीवन के हर क्षेत्र में मेरा सहयोग दिया। हमेशा सही सलाह देकर जीवन में आगे बढ़ने का मार्ग दिखाया। अतः पूजनीय स्नेहिल माता-पिता के चरणों में मैं नतमस्तक हूँ।

इसके अतिरिक्त मैं अपने जीवनसाथी के सहयोग को भी भूली नहीं हूँ ज़िन्होंने समय-समय पर मुझे इस शोधकार्य को पूर्ण करने का प्रोत्साहन दिया तथा इसके सफलपूर्वक पूर्ण होने की कामना करते रहे। उनके प्रति भी मैं श्रद्धा से आभार व्यक्त करती हूँ। परिवार के अन्य सभी लोगों का आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मेरा हौसला बढ़ाया। उन्हीं के आशीर्वाद से आज मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सफल हुई हूँ।

मैं श्रीमती हंसा मेहता लायब्रेरी के सभी स्टाफ मेम्बर विशेषकर सुश्री ज्योति भट्ट (दीदी), श्री एम.एम. परमार जी, श्रीमति पल्लवीबहन ब्रह्मभट्ट तथा जीतेशभाई चौधरी जी का भी हृदय से आभार व्यक्त करना चाहूँगी जिन्होंने मेरे विषयानुकूल पुस्तकें, विविध सामग्री उपलब्ध कराकर अपना सहयोग प्रदान किया। इसके साथ ही सेन्ट्रल लायब्रेरी, मांडवी, बडौदा स्टाफ के प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि शोध की दिशा में किये गये मेरे इस छोटे से प्रयास को स्वीकार करें और अज्ञानतापूर्ण हुई त्रुटियों को उदार हृदय से क्षमा प्रदान करें।

विनीत

– **नीलिमा सक्सेना**

* * * * *